

कहानी



डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी

प्राइवेट स्कूल के शिक्षक रामेश्वर शर्मा स्वयं के घर का सपना देखते देखते रिटायर हो गए थे। व्यवस्था के चलते वे दो तीन दिन से न तो पौधों को पानी दे पाए थे और न ही चिड़िया के लिए दाना-पानी ही रख पाये थे। बगीचे की स्थिति से उत्पन्न बेचैनी ने उन्हें पुराने दिनों की स्मृति में पहुँचा दिया था..... उनका गाँव का

बहुत बड़ा घर, खेती बाड़ी बगीचा..... पिताजी का लाड़ प्यार, पेड़ पौधों की निस्सीम हरीतिमा में खेलते, कूदते कब सब कुछ बिखर गया, घर, खेत बिक गए माता-पिता चले गए - एक बहन थी वह भी बीमारी में चल बसी रह गए रामेश्वर जी और होशंगाबाद में बस गए, वे इस किराए के छोटे से मकान में, जिसके सामने जरा सा बगीचा और उसकी सेवा में जी जान से लगे रहते थे स्वयं.

उनके बेटे कुशाग्र की यद्यपि पुणे में नौकरी लग चुकी थी, उसका पैकेज भी अच्छा था पर उसकी शादी में यह किराए का मकान बाधा भी बन रहा था. सब यही कह कर चले जाते कि किराए के घर में हम अपनी लड़की नहीं ब्याह पाएंगे- आप कहीं और रिश्ता देख लीजिये. शर्मा जी को यद्यपि इस किराए के घर से कोई शिकायत नहीं थी. वे और उनकी पत्नी सुधा इस घर से संतुष्ट थे. कड़के की सर्दी, भारी बारिश और प्रचंड ग्रीष्म में भी यह घर उन्हें हमेशा राहत ही देता था. मकान-मालिक तो इतने भले थे कि हमेशा यही कहते शर्मा जी, आपका ही घर है, इसे अपना ही घर समझें, हम भी आपके ही हैं.

भले ही शर्मा जी घर नहीं खरीद पाए थे पर उनके

बेटे कुशाग्र ने अपनी सहकर्मी कौशिकी के सहयोग से पुणे में एक फ्लैट खरीद लिया था. कौशिकी के पिताजी ने अपनी एकमात्र बेटे को फ्लैट दिलाने में भरपूर आर्थिक सहयोग इस मनोभाव से भी दिया था कि कुशाग्र जैसा सुदर्शन, ब्राह्मण, कुलीन दामाद उन्हें पुणे में ही घर बैठे मिल गया था. कुशाग्र की शादी भी शर्मा जी और सुधा की इच्छा के प्रतिकूल ही हुई थी. दोनों सजातीय, संस्कारवान, साड़ी पहनने वाली, सुंदर, सुशील कुलवधू का सपना ही देखते रह गए थे.

फिर जब कुशाग्र लौटा तो सुधा और शर्मा जी बेहद खुश होते हुए पुणे पहुँच गए थे. यद्यपि पुणे में शर्मा जी और सुधा बंधन सा महसूस करते थे परन्तु पुत्र मोह में उन्होंने घर का पूरा काम सँभाल लिया था. सुधा को बहू के रंग-ढंग जरा भी पसंद नहीं थे परन्तु फिर भी वह उसकी हर सुविधा का ध्यान रखती थी. दो महीने बहुत धीमी गति से बीते थे यहाँ पर. उस दिन शर्मा जी को तबियत कुछ अनमनी सी थी. सुधा ने उन्हें चाय का कप पकड़ाया तो उनके हाथ से झूट गया- पूरी चाय सफेद फर्श पर फैल गई और मंहंगा कप भी चूरचूर हो गया. बेचारी सुधा रगड़ती रही पर फर्श पहले जैसा नहीं हो सका.

दूसरे दिन शर्मा जी कढ़ी-चावल खाकर हाथ धोने जा रहे थे तो उन्हें दीवार का सहारा लेना पड़ा. दीवार पर कढ़ी और चावल के हाथों की पीली सी लाईन बन गई थी. सुधा ने कोशिश की थी दीवार पोंछने की पर हल्की पीली लाइन अलग ही दिख रही थी. बहू की पैनी नजरें सब देख रही थीं. उस दिन सुधा रसोई में दूध गरम कर

अपना घर

रही थी कि शर्मा जी ने आवाज दी थी. सुधा दौड़ कर आई और शर्मा जी की बात सुन ही रही थी कि पूरा दूध उफन कर रसोई घर में फैल गया था. बहू भी उसी समय पानी लेने रसोई घर में गई थी. वहाँ का दृश्य देख उसका पारा चढ़ गया - कभी चाय, कभी दूध और कभी दीवार पर पीले रंग..... हद है पूरी फर्श बिगड़ गई दीवारें देखी नहीं जाती..... दूध यहाँ ऐसे बह रहा है..... कचरा घर हो गया..... हमारा फ्लैट तो..... इन दोनों ने हर जगह सामान फैला दिया..... कोई नौकरानी क्यों नहीं खोज लेते हो तुम कुशाग्र..... इन्हें विदा करो अब यहाँ से..... मैं और कहीं तक..... कुशाग्र भी दूध की इस प्रकार की बर्बादी से चिढ़ उठा था..... बाबू आमना..... आप लोगों का तत्काल में टिकट करा देता हूँ आप लोग लौट जाइये..... बहुत रह लिये यहाँ पर..... घर में बहुत अशांति छा रही है..... रोज रोज कुछ न कुछ.....

वापस लौट आए थे दोनों अपने उसी किराए के मकान में. तोमर साहब ने ऊपर से ही आवाज दी थी- अरे भाई शर्मा जी, उधर कहीं जा रहे हैं..... इधर ऊपर ही आ जाओ..... रामू, शर्मा जी से चाबी लेकर जरा उनका घर तो साफ कर दे..... देख जरा पानी बगैरा..... मोटर चला दे..... उनका सामान ले ले और उन्हें ऊपर भेज दे.....

मकान मालिक तोमर साहब, उनकी पत्नी, उनके पुत्र और पुत्रवधू..... सभी ने बेहद प्रेम, आत्मीयता और सम्मान से उन्हें अपने ही कक्ष में बुला लिया था. बहू चाय और गरम गरम पकौड़ें ले आई थी. शर्मा जी ने जैसे ही ट्रे में से चाय का प्याला उठया वैसे ही

अचानक प्याला उनके हाथ से फिसल गया और पूरी चाय उनके बहुत मंहगे सोफे पर गिर गई, प्याला बहुत पतले कॉच का नक्काशीदार बेहद मंहगा और सुंदर था, फर्श पर गिरकर उसके तीन टुकड़े हो गए थे. अरे शर्मा जी, काहे परसान हो रहे..... बैठिये आराम से, इधर आ जाइये..... गिर जाने दीजिये..... कोई बात ना है..... थके हारे आए हैं..... जाओ बहू दूसरी चाय बना लाओ..... फटाफट. भाभी, आप काहे घबरा रही हैं..... आप लोग ना थे तो मन ही ना लगता था..... घर फिर से जग गया है..... और हौं भाभी साम को भोजन मत ना बनाना..... यहीं बन जाएगा..... किराए के घर में प्रवेश करते हुए शर्मा जी और सुधा की आँखें नम हो उठी थीं..... उन्हें लगा वे अपने-घर लौट जाए हैं.



क्लास by बड़े भाई

इन दो कामों के लिए आपके दो घंटे मिलेंगे?



संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्काल ट्रेनर

छोटे भाई, लोगों को किसी विचारों ने तभी बदला है जब हमने उन्हें अपनी आदतों और दिनचर्या में उतारा है. जो विचार हमारी आदत का हिस्सा हो जाते हैं वो हमारी मजिल को अपने हिसाब से प्रभावित करते हैं. आपकी दिनचर्या से जो मैंने आपकी सुबह और रात का एक एक घंटा मांगा है उसे यदि आप अपने रोज का हिस्सा बना लें तो यकीन मानिए, यह आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचा कर ही दम लेगा. इसमें कोई संशय नहीं. इन दो कामों से घीरे घीरे हर बुरी आदतों से आप खुद किराया करने लगेंगे. आप अपने समय की कीमत समझने लगेंगे और फिर जिसने यह कर लिया उसे कुछ हासिल करने से कौन रोक सकता है. छोटे भाई, सुबह और शाम वाले ये दो जादूई काम हैं - किसी अच्छी शरिस्वत का साक्षात्कार देना और कोई किताब पढ़ना. यह बड़ी आसान चीज लगी होगी. पढ़कर आपने शायद आर्टिकल को ही बोरिंग घोषित कर दिया हो लेकिन ये दोनों वाकई जादूई हैं. मैं यह अपने निजी अनुभव से भी कह रहा हूँ.

छोटे भाई, जब आप किसी का साक्षात्कार देख रहे होते हैं तो आप उसके जीवन की उस समय तक की यात्रा के उतार उतार, कमियाँ, खुबियाँ और उसके निष्कर्ष देख सुन रहे होते हैं जो जाने अनजाने आपको एक अनुभव और सीख मिल रही होती है, जो आपको लक्ष्य पाने की यात्रा को बेहद आसान कर सकती है और आपको जीवन की चुनौतियों का सामना करने में तबकीब दे सकती है. और इसी तरह ही जब आप किताब पढ़ रहे होते हैं तो इससे भी किसी के अनुभव, किसी की कल्पना, किसी के शानदार विचारों से रूबरू हो रहे होते हैं. यह भी आपके जीवन को दिशा देती है. इसलिए छोटे भाई, यदि आप सुबह के एक घंटे को किसी बड़ी शरिस्वत का साक्षात्कार देखने में और रात के एक घंटे सोने से पहले कोई अच्छी सी किताब पढ़ने में देंगे तो देखते देखते कुछ ही महीनों में आप बिल्कुल अलग व्यक्ति हो जाएंगे.

इसे अपनी दिनचर्या में शामिल करिएगा और बताइएगा कि ऐसा हुआ या नहीं. बस, यही कहना था, धन्यवाद.

कविता

चाहे मैं जितना लिखूँ

प्रेम का सागर लिखूँ
गोप का गवाल लिखूँ
या चेतना का चिंतन लिखूँ
प्रति की गागर लिखूँ
या आत्मा का मंथन लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

ज्ञानियों का गुंथन लिखूँ
या गाय का गवाला लिखूँ
कंस के लिए विष लिखूँ
या भक्तों का अमृत प्याला लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

पृथ्वी का मानव लिखूँ
या निर्लिप्त योगेश्वर लिखूँ
चेतना चिंतक लिखूँ
या संतुष्ट देवेश्वर लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

जेल में जन्मा लिखूँ
या गोकुल का पलना लिखूँ
देवकी की गोदी लिखूँ
या यशोदा का ललना लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

गोपियों का प्रिय लिखूँ
या राधा का प्रियतम लिखूँ
रुक्मिणी का श्री लिखूँ
या सत्यभामा का श्रितम लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

देवकी का नंदन लिखूँ
या यशोदा का लाल लिखूँ
वासुदेव का तनय लिखूँ
या नंद का गोपाल लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

नदियों-सा बहता लिखूँ
या सागर-सा गहरा लिखूँ
झरनों-सा झरता लिखूँ
या प्रकृति का चेहरा लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

आत्मतत्व चिंतन लिखूँ
या प्राणेश्वर परमात्मा लिखूँ
स्थिर चित्त योगी लिखूँ
या यतचित्त सर्वात्मा लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

कृष्ण आप पर क्या लिखूँ
कितना लिखूँ
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मैं जितना लिखूँ !!

राकेश चौहान

व्यंग्य रचना



आलस में सुख है



मेघा राठी

लोग कहते हैं आलस मत करो, किताबों में भी यही लिखा है कि आलस में सुख नहीं. पर मुझे लगता है कि आलस करना

उतना आसान नहीं है जितना सुनने में लगता है. यह भी एक महत्वपूर्ण कला है. इस संसार का दुर्भाग्य है कि इस कला को कभी समझा ही नहीं गया और जिसने इस कला को समझ कर इसे अपना लिया उसे जीवन का आनंद प्राप्त हो गया. आलस करने पर ही सर्वोत्तम विचारों की भी उत्पत्ति होती है क्योंकि विचार प्रकाश कर क्रिया - कलाओं के दबाव के अभाव में मस्तिष्क पूर्णतः मुक्त होकर ऐसे विषयों पर विचार करता है जिन पर किसी का ध्यान आसानी से नहीं जाता. जरा सोचिये, न्यूटन यदि पेड़ के नीचे आराम से न बैठे होते तो क्या सेब के गिरने पर उनका ध्यान इतनी गहराई से जाता कि वे गुरुत्वाकर्षण की खोज कर पाते!

दरअसल आलस करना मन से जुड़ा हुआ है. यदि आलस करने में निपुणता प्राप्त करनी है तो सर्वप्रथम अपने मन की लगाम अपने हाथों में न लेकर मन के ही पास छोड़नी होगी. सबसे पहले मन की मित्रता मस्तिष्क से करवानी पड़ेगी. आलस करने में सबसे बड़ी बाधा यही उत्पन्न करता है. बार - बार याद दिलाएगा कि अभी ये काम करना है, अभी वो काम बचा है, मटर का मौसम है झीलकर फ्रिज में स्टोर कर लो या आज मुन्नी के पापा के लिये उनकी पसंद का मूंग कि दाल का हलवा बना लो. भले ही उस हलवे के चक्कर में दर्द से बेहाल कलाइयाँ रो - रो कर बाम की बदनू नाक को सुंधा -सुंधा कर तंग करती रहें. आलस करने पर व्यर्थ के दबाव भी व्यक्ति बच जाता है क्योंकि लोगों को पता होता है कि यह कार्य आपको देने का कोई लाभ ही नहीं क्योंकि यह अज्ञात है कि कार्य पूर्ण होगा भी या नहीं अथवा इस प्रकार होगा कि सामने वाले व्यक्ति को यह कहने पर विवश होना ही पड़े कि भाई तू रहने दे, हम खुद कर लेंगे. कार्यालय, घर में आलस के इस विशेष प्रभाव से शारीरिक और मानसिक कष्ट नहीं होते क्योंकि यदि सौंपा गया कोई कार्य सही प्रकार से नहीं हुआ तो

संपादकीय बोर्ड

प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी

लघुकथाएं



वसंत रायच

रोजाना की तरह रीमा ने अपनी सास को फोन लगाया, हालचाल जाना. बातचीत के दौरान अपनी सासु माँ से उसने पड़ोसवाली चाची की तबीयत के बारे में भी पूछ लिया. इतना सुनते ही उसकी सासु माँ ने तथाकथित पड़ोसिन चाची की बहू की तारीफों के पुल बाँधने शुरू कर दिये. कितनी अच्छी बहू है उसकी, बर्ध डे हो या सास-ससुर की एनिवर्सरी. केक काटना, पार्टी देना वह



मनीष वैद्य

हमारे भीतर ताप बढ़ जाता है. रिश्तों की नमी का कोई हरहरता बरगद अपनी जड़ों सहित हमसे अनायास दूर हो जाता है तो संवेदना की नमी हमें कविता के नजदीक ले जाती है. अनूठे कथाकार पंकज सुबीर जब अपने पिता के चले जाने से खालीपन और अवसाद में चुपों साथे मीन होने लगते हैं तो उनके भीतर का संवेदनशील मन अचानक कविता की भाव-भूमि गढ़ता है. खुद पंकज कहते हैं- एक दिन पहले ही पिता को अस्थिरता के नम्रदा में विसर्जित करके आया था. मेरे सामने कागज और क्लम रखे हुए थे. मैंने कलम को उठया और यूँ ही लिखना शुरू किया. जो लिखा जा रहा था वह एक कविता जैसा था- 'पिता, तीन दिन बीत गये' अगले दिन जब फिर बैठा तो फिर एक कविता लिखी... बस उसके बाद मिलसिला चलता रहा. दिनों नहीं बल्कि अगले कुछ महीनों तक. प्रारम्भ में कविताएँ पिता पर लिखी गयीं... फिर धीरे-धीरे और विषय जुड़ते चले गये. इस प्रकार इन कविताओं का जन्म हुआ.

मेरे लिए पंकज सुबीर की कहानियाँ पढ़ना शुरू से ही प्रिय रहा. एक अनकहे

सास-बहू

कभी नहीं भूलती, शहर के विधायक तक को बुलाना हो. वह कभी पीछे नहीं हटती. खर्च की परवाह किए बगैर ब्यूटी पालर वाली को घर में ही बुलाकर, अपने साथ अपनी सास का भी आइब्रो, फेशियल, हेयर कटिंग से लेकर बाँड़ी मसाज तक करवाती है, उसकी बहू. तभी तो उसकी सास बहतर की होकर भी पचास की लगती है. अपनी सास की फीलिंग्स को वह ब्यूबी समझती है, समय-समय पर अपनी सास को सरप्राइज देकर वह हमेशा खुश रखती है. उसकी सास ने व्यंग्य के लहजे में कहा %बड़े भाग्य से मिलती है, उसकी जैसी बहू%. रीमा ने अपनी सास की हाँ में हाँ मिलाते हुए जवाब दिया. बिल्कुल सही बात है बड़े भाग्य से मिलती है उनकी जैसी बहू और बहू को हबहू माँ जैसी सास. इतना सुनते ही उसकी सास ने फोन काट दिया.

प्यार का प्रतिदान



निकिता जैन

फलता-फूलता छोड़ कर गई थी, उसकी जगह वहाँ थी सूखी और मृत शाखें और अनिर्गत पुरानी यादें..... माली बाबा ने? भी कह दिया था कि, यह पौधा पर? चुका है इसे फेंक देते हैं, पर न जाने क्यों सूखी पाती. मृतप्राय शाखों और कंकाल से दिखने वाले उस पौधे को उखाड़ कर फेंकने का मन नहीं किया? न जाने किस आस, विश्वास और उम्मीद की डोर बंधी थी कि, उसे छान्न में रखकर पहले की तरह ही उसकी देखभाल करती रही.

जीवन और अनुराग का जाने कौन-सा तार शेष बचा था, मेह की पहली बुढ़ी में भीगती ही तीन - चार दिन पहले मोगरे के उसी पौधे में एक छोटा सा हरा अंकुर दिखाई दिया और अगले तीन चार दिनों में ही छोटे-छोटे कई नये अंकुर दिखाई देने लगे. इस मौसम में चाहे फूल आए न आए हरी-हरी, कोमल, चिकनी, रमकीली पतियों से तो वह पुनः लक-दक हो ही जाएगा. नेह के अंकुर बंजर और शुष्क भूमि में चाहे कितनी ही गहराई में दबे रहे, नमी पाकर अंकुरा ही जाते हैं? ...यही प्यार है, और यही प्यार का प्रतिदान है..

इस बार जब लौटो तो उम्मीद की तरह लौटना तुम

(वरिष्ठ लेखक पंकज सुबीर के ताजा कविता संग्रह पर पाठकीय टिप्पणी)



भीतर गहरे तक जुड़ती है. इनमें सुकोमल प्रेम-कविताएँ भी हैं, जो प्रकारांतर से दुनियादारी के खिलाफ प्रेम को मजबूती से विकल्प की तरह रखती हैं. प्रतिरोध की कविताएँ हैं और प्रकृति के प्रेम में रची गई कविताएँ भी हैं, जो बड़े सवालों से मुठभेड़ करती सी लगती हैं. दरअसल जीवन को सुंदर बनाने में मानव सभ्यता और संस्कृति के साथ उसकी बहूआयामी चेतना का विस्तार जरूरी है. संवेदना ही उसे समाज और प्रकृति से जोड़ती है. कविता हमें संवेदना, प्रेम, सद्भाव, सहिष्णुता, अहिंसा, समर्पण और परोपकार जैसे प्रतिमानों के जरिए चेतना संपन्न बनाकर एक समरस समाज के लिए प्रयत्नशील रहती है.

कवि प्रेम को लिखता-रचता नहीं, उसे किरदारों को इतनी सुगहता से खड़ा करते हैं और उनमें संवेदना की नमी ऐसी होती है कि पढ़े जाने के बाद भी कई महीनों-सालों तक वे भीतर रची-बसी रह जाते हैं. ऐसे में उनकी कविताओं का यह ताजा संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' मिलते ही पढ़ गया. तो पाया कि गद्य लिखने में जो झूट गया है, वह मुसलसल यहाँ चला आया है. कविताओं की शक्त में, उसी ताप, तेवर, तरतीब. इनमें संवेदनाओं की वही घनेरी जैसा था- 'पिता, तीन दिन बीत गये' अगले दिन जब फिर बैठा तो फिर एक कविता लिखी... बस उसके बाद मिलसिला चलता रहा. दिनों नहीं बल्कि अगले कुछ महीनों तक. प्रारम्भ में कविताएँ पिता पर लिखी गयीं... फिर धीरे-धीरे और विषय जुड़ते चले गये. इस प्रकार इन कविताओं का जन्म हुआ.

इस संग्रह की कुछ कविताओं में पिता के जाने के बाद का खालीपन है, उस बरगद की छाया के अनायास छीन जाने की मनस्थिति है, जो मुझ जैसे पितृविहीन हर पाठक से

पंकज सुबीर (कविता)

उम्मीद की तरह लौटना तुम

किसम का जुड़ाव रहा. वे अपने आसपास के किरदारों को इतनी सुगहता से खड़ा करते हैं और उनमें संवेदना की नमी ऐसी होती है कि पढ़े जाने के बाद भी कई महीनों-सालों तक वे भीतर रची-बसी रह जाते हैं. ऐसे में उनकी कविताओं का यह ताजा संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' मिलते ही पढ़ गया. तो पाया कि गद्य लिखने में जो झूट गया है, वह मुसलसल यहाँ चला आया है. कविताओं की शक्त में, उसी ताप, तेवर, तरतीब. इनमें संवेदनाओं की वही घनेरी जैसा था- 'पिता, तीन दिन बीत गये' अगले दिन जब फिर बैठा तो फिर एक कविता लिखी... बस उसके बाद मिलसिला चलता रहा. दिनों नहीं बल्कि अगले कुछ महीनों तक. प्रारम्भ में कविताएँ पिता पर लिखी गयीं... फिर धीरे-धीरे और विषय जुड़ते चले गये. इस प्रकार इन कविताओं का जन्म हुआ.

उम्मीद की तरह लौटना तुम कविता संग्रह)
पंकज सुबीर
मूल्य-300 रुपये
शिवना प्रकाशन, सीहोर (मप्र)